International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(6): 29-30

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(6): 29-30
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 13-09-2016
Accepted: 16-10-2016

डॉ. राका शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
एन०के०बी०एम०जी० कॉलिज,
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. राका शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
एन०के०बी०एम०जी० कॉलिज,
चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

कविरत्न श्री दिलीपदत्त उपाध्याय का जीवन दर्शन

डॉ. राका शर्मा

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2016.v2.i6a.1939

प्रस्तावना

संस्कृत–साहित्य पुरातन होने पर भी चिरनवीन है। उसकी प्रासंगिकता कभी क्षुण्ण नहीं होती। देशकाल का प्रतिबिम्ब उसमें स्पष्ट प्रतिभासित होता है। उसके साधकों ने, राष्ट्रहित में अपनी रचनाओं से उसे सदैव मण्डित किया है।

'श्रीप्रतापचम्पू' के प्रणेता श्री दिलीपदत्त उपाध्याय जी के साहित्य में समाज सुधार राष्ट्रीयता एवं भारतीय–संस्कृति का गौरव सर्वत्र दिखायी देता है। साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण विनय उनमें सुप्रतिष्ठित है। साधना और निष्ठा उसके अविभाज्य अंग है। वैचारिक सहिष्णुता उसका आभूषण है–

नाहं कविः सिद्धरसोऽस्मि विज्ञाः, प्रज्ञानमेवाप्रतिभातत्वता।
अत्रापि यत किंचन वस्तु हृद्यं, तत्कारणं पूज्यगुरुप्रसादः।।

भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक श्री उपाध्याय जी ने महाराणाप्रताप को अपने काव्य का चरितनायक बनाकर अपने इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की है– अपनी पुण्यभूमि भारतवर्ष की शोचनीय दशा को देखकर उन्हें बहुत दुःख होता है।

दिलीपदत्त जी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। वे ऐसी राजा की पराधीनता को निंदनीय मानते हैं, जहाँ वाणी की अभिव्यक्ति पर रोक हो–

धिक् धिक् तादृङ् नरपरवशतां यत्र वाचोऽपिरोधः। प्र०चं० 5/14

नारी के प्रति दिलीपदत्त जी के मन में बहुत आदर है। अमर सिंह जब शत्रु सेनापति की पत्नी को महाराणाप्रताप के पास लेकर आये तो उन्होंने उनके कृत्य की भर्त्सना करते हुए उस नारी को जिस प्रकार सान्त्वना प्रदान की वह उदात्त चरित्र की प्रेरणा देने वाली है, उन्होंने उस शत्रु नारी को आदर सहित उसके पति के पास भिजवा दिया।

पुरूष को पुरूषोचित गुणों से परिपूर्ण होना चाहिए। तभी वह आदर प्राप्त करता है। महाराणाप्रताप के माध्यम से कवि अपने इस भाव को अभिव्यक्त करने में पूर्ण समर्थ रहे हैं। जब महाराणाप्रताप के द्वारा शत्रु ललना को उसके पति के पास ससम्मान पहुँचवा दिया जाता है तो वह स्त्री सखियों के द्वारा पूछे जाने पर उनके गुणों का वर्णन करते हुए कहती है कि आर्य जितने बलिष्ठ एवं शूरवीर होते हैं, उतने ही धर्मनिष्ठ भी होते हैं। पराधीन होने पर भी वह अपने धर्म का परित्याग नहीं करते। जबकि हमारे यवन पुरूषों में थोड़ा सा भी संयम नहीं है। हमारे पुरूष पर स्त्रियों के साथ हमेशा कुटिलतापूर्ण आचरण करते हैं–

आर्यजनाः सखि यथा प्रथिता बलिष्ठा,
शूरास्तस्यैव कृतिनो निजधर्मनिष्ठाः।
तेषां मतं परमसुन्दरमस्ति नूनं
यत्पारवश्यसमयेऽपि मनो म दूनम्।।
अस्मन्मतं तु सखिनाऽस्ति तथाप्रभावम्
नालोकि संयमलवोऽपियतः सभावम्।
यत्काम तन्त्रितधियो यवनाः सदैव
कौटिल्यमादधति हन्त परांगनासु।। प्र०चं० 8/56/57

कवि को अपनी आर्य जाति पर गर्व है। जिन जातियों में विनम्र, निर्मलबुद्धि, धार्मिक, पराक्रमी, परोपकारी तथा स्त्रियों को सम्मान देने वाले व्यक्ति जन्म लेते हैं।
कवि की दृष्टि में त्याग से परिपूर्ण प्रेम ही वास्तव में प्रेम है। पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति के साथ हँसते–हँसते सती हो जाती हैं क्योंकि वे अपने पति के वियोग को सहन नहीं कर सकतीं। जो मनुष्य उनके बलिदान का उपहास करते हैं वे प्रेम के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते–

> पतिप्रियस्ता अतएव धन्याः सोढुं समर्था नहि तद्वियोगम्।
> चिताग्निमध्ये विनिपत्य सद्यः सदैव तैः स्वर्गपदं लभन्ते।।
> प्रेतेधबे यद् विजहाति देहं सभ्यांगना तुष्टमना वयस्ये।
> हसिन्त तां मूढ़धियो मुधैव विदन्ति ते प्रेमरसं हि नैव।।
> प्र०चं० 8/62, 63

आचार्य मम्मट ने यश को सबसे बड़ा प्रयोजन माना है। कवि भी यश की रक्षा करना सर्वोपरि समझता है, क्योंकि राज्य, धन, बन्धुजन आदि सब अस्थायी हैं। यश के द्वारा व्यक्ति अमर हो जाता है–

> राज्यं धनं बन्धुजनादि सर्वं न स्थायिरूपेण विराजतेऽत्र।
> यशो हि तादृक शुभकर्मजन्यं वस्त्वस्ति यन्नो निधनं ददाति।। प्र०चं० 8/67

सोद्देश्य शिक्षा एवं सुव्यवस्थित शिक्षा का कवि पक्षधर है। उनके मत में शिक्षा बौद्धिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति प्रदान करने वाली होती है। प्र०च० 2/7–8
कवि की भगवद्भक्ति में बहुत रूचि है, जिस तल्लीनता से वे निराकार ब्रह्म की उपासना करते हैं उसी प्रकार साकार रूपों की। बिना भगवान् की कृपा के कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है। कवि कर्मठता, पौरूष और उत्साह में विश्वास रखते हुए भी भाग्यवाद पर विश्वास रखता है। जीव सोचता कुछ है और विधाता कुछ और ही कर देता है–

> जीवोऽन्यथा चिन्तनमातनोति, स्वकाम्यकामो मुदितान्तरंगः।
> वैरी विधिस्तर्हि हहो! क्षणेन ततोऽन्यथैवाशुविधिं विधन्ते।।
> प्र०चं० 2/7–8
> को जामाति कदा कस्य का दशा भाविनि भवे।
> यद्धीनं जगच्चक्रं स एवाखिलविद विभुः।। प्र०चं० 9/4
> भाग्यचक्रमहो किन्नो विचित्रं भुवि विद्यते। प्र०चं० 9/4

यथासमय प्रकृति का सुंदर वर्णन कवि के प्रकृति के प्रेम को प्रदर्शित करता है। उद्यान स्थान की शोभा बढ़ाते हैं। दीर्घिकाएँ जल का स्तर संतुलित रखने के साथ चित्त को प्रसन्नता प्रदान करती है। उदयपुर के वर्णन प्रसंग में पुष्पों, लताओं एवं प्रमदवनों का वर्णन किया गया है–
उदयपुरमपि सुरपुरमिव सम्पन्नश्रीकं सत्पूर्वापेक्षयाप्यति शयितां लोचनलोभनीयां श्रियं दधार। तत्र च तत्तकर्मचारूभिः कारूभिः क्षिप्रमेव संपादिता महाजनविश्रामहिहता मनःप्रसादाः प्रासादाः कलितानि तथा कल्पकल्पपादपानि नानाविधपुष्पवल्लिवलितानि उद्यानानि सज्जीकृतस्फटिकसोपानानि, सुदृढ़शिलाशकलमयकुइय विस्तारा महागभीराः सर्वतुपर्याप्तविमलनीरा सुदीर्घिकाः कारिताः अन्तःपुर समया च समारोपितानिनैकसुमनः परीतानि मनोज्ञानि प्रभदावनानि। (प्र०चं० 10 निश्वास पृष्ठ 113)
कवि, कविकर्म के गम्भीर ज्ञाता हैं। काव्य एवं रत्न कवि की दृष्टि में बराबर हैं, क्योंकि जैसे–जैसे दोनों घिसे जाते हैं वैसे–वैसे इनकी चमक बढ़ती जाती है–

> काव्यं तथा रत्नमिदं जगत्यां द्वयं समं भाति मदीयबुद्धौ।
> यथा यथाऽमुष्य विमृष्टियोगस्तथा तथायाति मनोहरत्वम्।।
> प्र०चं० 1/21

काँच और मणि में अन्तर कोई–कोई काव्यवेत्ता ही कर सकता है। (प्र०च० 1/15) त्रिविक्रम भट्ट जी ने भी अपने नलचम्पू में इसी प्रकार का भाव स्पष्ट किया है कि कविता का रस एवं कविता के श्रम को कवि ही जान सकता है। (नलचम्पू श्लोक 18, 23)
कवि ऐसे व्यक्तियों के सामने जो न काव्य रचना करना जानते हैं न सूक्तियों के रस का आनन्द लेना जानते हैं वहाँ कविता की चर्चा करना निरर्थक मानता है–

> काव्यं न ये कर्तुमपि क्षमन्ते, मूढ़ेश्वराः सूक्तिषु न क्रमन्ते।
> तेषां पुरः काव्यकथाप्रसंगः, किं मृत्युदुःखादतिरिच्यते नो।।
> प्र०चं० 1/18

कवि का मन देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत है। उसका मानना है कि जन्मभूमि की मुक्ति के लिए अपनी आहुति देना हितकारी है। क्षत्रिय रणयज्ञ में कटे हुए अंगों के हविष्य से देवताओं को प्रसन्न करके समस्त प्रकार के भोगों को प्राप्त करते हैं। (प्र०चं० 8/15–17) राजा को अपने मंत्रियों के साथ मित्रों के साथ संमंत्रणा करके कार्य करना चाहिए। (प्र०चं० 1/80) इसी प्रकार का राजा प्रधानता को प्राप्त करता है। राजा हो या साधारण व्यक्ति वे उसी का जीवन सफल मानते हैं जिसके नाम से शत्रु व्याकुल हो जाते हैं। मित्र सुख का अनुभव करते हैं तथा आश्रय में लोग आनन्दित होकर निवास करते हैं। (प्र०चं० 2/6) संग्राम भूमि में शत्रुओ का नाश करके जो शरीर छोड़ता है वह वीर आदर सहित स्वर्ग को प्राप्त करता है। (प्र०चं० 3/42) गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यही कहा है–

> हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
> तस्मादुतिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। 2/37

विगत प्रताप राजा का कोई सत्कार नहीं करता है। (प्र०चं० 8/5) जो राजा डरकर शत्रु का शरण ले लेता है वह अपयशको प्राप्त करता है। (प्र०चं० 3/59) जो मनुष्य/राजा अपनी जाति, धर्म, भूमि की रक्षा प्राणों का बलिदान करके भी करता है, वह धन्य है तथा कल्पों तक स्थायी यश को प्राप्त करता है। सज्जनों का पालन करने के लिए तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए ही पृथ्वी पर वीरों का जन्म होता है। (प्र०चं० 7/26)
सबका हित सज्जनों के लिए सर्वोपरि होता है वहीं दुष्टों का स्वभाव उल्लूओं जैसा होता है। जो दोषा अर्थात् रात्रि में उत्सव मानते हैं। विषम दृष्टि वाले तथा भाँति–भाँति के प्रलाप करते रहते हैं। (प्र०चं० 1/8)
कवि की दार्शनिकता उनके जीवन का अभिन्न अंग है जो कि अनायास ही स्थान–स्थान पर प्रकट हो जाती है। (प्र०चं० 4/45, 8/50)
सत्य एवं निर्भीकता के प्रति कवि का बहुत अनुराग है। (प्र०चं० 8/70, 4/43)
पराधीनता अभिशाप है क्योंकि परवश होकर व्यक्ति क्या–क्या कृत्य नहीं करता। (प्र०चं० 8/10) तुलसीदास जी ने भी श्रीरामचरितमानस में 'पराधीन सपनेहुं सुख नाहिं' कहकर इसी भाव को व्यक्त किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रचापचम्पू
2. नलचम्पू
3. कामन्दकीय नीतिसारः
4. श्रीमद्भगवद्गीता
5. काव्यप्रकाशः प्रथम उल्लासः
6. श्रीरामचरितमानस